समलैंगिकता के नैतिक पक्ष

drishtiias.com/hindi/printpdf/ethical-side-of-homosexuality

- सामाजिक दायरों में समलैंगिकता के मुद्दे पर बीतें सालों में पक्ष-विपक्ष में तरह-तरह की चर्चाएँ सामने आई हैं।
- कुछ लोग इसे अप्राकृतिक और मानसिक बीमारी मानते हैं। उनका तर्क है कि समलैंगिकता की प्रवृत्ति को अगर बढ़ावा दिया गया तो इससे सामाजिक व पारिवारिक व्यवस्था ध्वस्त हो जायेगी।
- समलैंगिकता का समर्थन करने वाले लोग मानते हैं कि हर व्यक्ति को इस बात का अधिकार मिलना चाहिये कि वह किससे प्रेम करे । इसमें समाज या सरकार का कोई दखल न हो। ऐसे लोग इस तरह के रिश्तों को विज्ञान सम्मत मानते हैं।
- समलैंगिकता के मुद्दे पर सार्वजनिक जनमत बुरी तरह विभाजित रहता है। लेकिन इस पूरी बहस से सबसे महत्त्वपूर्ण सवाल यही निकलकर आता है कि क्या आज भारतीय समाज में समलैंगिकता के मुद्दे पर कायम हिचक धीरे-धीरे दूर हो रही है?
- क्या समलैंगिक संबंधों को सामाजिक तौर पर वैध बनाने की कुछ गुंजाइश पैदा हो गयी है?
- निश्चित तौर पर जहां तक इन संबंधों की सामाजिक स्वीकृति की बात है तो इन सवालों का उत्तर नकारात्मक ही है। लेकिन कुछ मामलों में लोगों ने अपनी समलैंगिक पहचान स्वीकार करने की जो मज़बूत प्रवृत्ति दिखाई है, वह गौर करने लायक है।
- चिकित्सा विशेषज्ञ मानते हैं कि यह अचानक पैदा हुई आदत या विकृति नहीं है। यह आकर्षण जन्मजात भी हो सकता है।
- बारहवीं सदी में वराह मिहिर ने अपने ग्रंथ 'बृहत जातक' में कहा था कि समलैंगिकता पैदाइशी होती है और इस आदत को बदला नहीं जा सकता।
- हालाँकि इतिहास में ही ऐसे कई उदाहरण भी मिलते हैं जिनमें समलैंगिकता को अपराध माना गया है, लेकिन यहां सवाल समलैंगिक पहचान के अस्तित्व का है, जिसे ज़्यादातर धर्मों के इतिहास में अस्तित्व के तौर पर समलैंगिक पहचान को नकारा नहीं गया है।
- इस सिलसिले में एक वैश्विक शोध भी हुआ जिसमें पाया गया कि 28 फीसदी महिलाएँ और 50 फीसदी पुरुष अपने जीवन में कभी न कभी समलैंगिकता की तरफ आकर्षित होते हैं। यह अलग बात है कि इनमें से बहुत कम ही ऐसे रिश्तों के प्रति लगातार गंभीर हो पाते हैं।
- दिल्ली उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश अजित प्रकाश शाह और न्यायाधीश एस मुरलीधर ने कहा था कि दो वयस्क लोगों की परस्पर सहमति से बनने वाले यौन संबंधों को आपराधिक मानना संविधान के अनुच्छेद 21, 14 और 15 में उल्लिखित मूलभूत अधिकारों की अवहेलना है।
- पंडित नेहरू द्वारा संविधान सभा में पेश 'उद्देश्यपरक प्रस्ताव', जो संविधान की प्रस्तावना का आधार है, को उद्धृत करते हुए न्यायाधीशों ने कहा था कि संविधान की मूल भावना यह है कि हर व्यक्ति का समाज में अहम स्थान है और किसी को सिर्फ इसलिये बहिष्कृत नहीं किया जा सकता कि बहुमत की राय में वह 'भिन्न' है। उन्होंने इसे समानता और व्यक्ति के आत्मसम्मान से जुड़ा मसला माना था।

- अदालत ने स्वयंसेवी संस्था नाज फाउंडेशन की याचिका के तर्कों से सहमति जतायी थी कि इस धारा के तहत असहमति से और अवयस्कों से बनाए गए यौन-संबंधों को ही आपराधिक कृत्य माना जाये। यह गौर करने वाली बात है कि 'नाज' ने बताया था कि इस कानून के कारण सरकारी संस्थाएं भेदभाव का रवैया अपनाती हैं, जिससे एड्स/एचआइवी के रोकथाम के लिये किए जा रहे प्रयासों में बाधा आती है।
- दरअसल ऐसे संजीदा मुद्दों को व्यापक सामाजिक स्वीकृति क्रमिक तौर पर मिलती है। जैसे कि आज धीरे-धीरे समाज में अपनी समलैंगिक पहचान को जाहिर करने को लेकर हिचक टूट रही है। यह सामाजिक चेतना का पहला चरण है।
- अब इस बात पर भी बहस हो सकती है कि क्या समलैंगिक वैवाहिक संबंधों को मान्यता दी जाये?
- जाहिर है कि आज ऐसे सवालों पर हमें समाज की क्रमिक चेतना के साथ सोचने की आवश्कयता है।